संसकृत की शास्त्रधर्मी तथा लोकधर्मी नाट्य परंपरा से पोषित हिन्दी रंगमंच

*** रेखा पाण्डेय**

हिन्दी नाटक के उद्भव और विकास पर सूक्ष्मता से विचार करने पर साफ पता चलता है कि हिन्दी नाट्य लेखन से लेकर नाट्य-चिंतन तक, संस्कृत नाट्य परम्परा का प्रभाव साफ दिखाई देता है। भारतीय चिंतन परंपरा में नाट्यशास्त्र को एक महान ग्रंथ माना जाता है। यह एक टेकनीकल ग्रंथ भी है जहाँ संगीत, नृत्य, वाद्य, हाव-भाव, अभिनेयता आदि नाटक के सूक्ष्म से सूक्ष्म बातों का विस्तृत वर्णन मिलता है। जिस प्रकार महर्षि पाणिनी के व्याकरण ग्रंथ- अष्टाध्यायी का कोई दूसरा काट नहीं है उसी प्रकार आचार्य भरत द्वारा रचित इस महान ग्रंथ का महत्व है। अतः कह सकते हैं कि संस्कृत नाट्य-चिंतन की यह सुदृढ़ परम्परा हिन्दी को विरासत के रूप में प्राप्त हुई । संस्कृत में नाट्यधर्मी (शास्त्रधर्मी) तथा लोकधर्मी दोनों ही परम्पराएँ निर्विवाद रूप से चल रही थी जिनका प्रभाव कहीं प्रत्यक्ष तथा कहीं अप्रत्यक्ष रूप से हिन्दी नाटकों पर पड़ा। नाट्यधर्मी परम्परा के अंतर्गत भास, कालिदास, अश्वघोष, शूद्रक, हर्षवर्द्धन, भवभूति, विशाखदत्त आदि के नाटकों को रखा जाता है जो कथ्य तथा शिल्प की गुणवत्ता लिए न केवल भारत बल्कि विश्व के नाट्य-साहित्य में विशिष्ठ स्थान रकते हैं।

चूँकि यह नाटक का लक्षण-ग्रंथ है, अतः एक तरफ तो इससे चिंतक एवं आचार्य प्रभावित थे तो दूसरी तरफ नाटककार भी 'नाट्यशास्त्र' का विवेचन करतें हुए डॉ. सुरेन्द्रनाथ दीक्षित लिखते हैं कि-

"भरत ने भारतीय नाट्यकला को व्यवस्थित शास्त्र और चिंतनधारा का रूप दिया। वह इतना व्यापक, सूक्ष्म और तात्विक है कि परवर्ती कोई भी आचार्य उसके प्रभाव की छाया में ही कोई चिंतनसूत्र प्रस्तुत कर सका। मौलिकता और व्यापकता की 'दृष्टि से भरत के नाट्य- सिद्धान्तों में ऐसे बीज निहित हैं जिनका प्रयोग आधुनिकतम नाटकों में भी सफलतापूर्वक हो सकता है। यह कम आश्चर्य की बात नहीं है कि सदियों पूर्व विश्व की किसी भी भाषा में नाट्य के इतने रूपों और

पक्षों पर इतनी सूक्ष्मता और विस्तार के साथ कोई ग्रंथ नहीं लिखा गया ।" (सुरेन्द्रनाथ दीक्षित - 'भरत और भारतीय नाट्यकला', राजकमल, 1970, (आमुख से) पृ. 13)

'नाट्यशास्त्र' में नाटक को पंचम वेद कहा गया है। ऋग्वेद से सामवेद से संवाद, यजुर्वेद से अभिनय तथा अथर्ववेद से रस लेकर स्वयं ब्रह्मा ने 'पंचम वेद' की रचना की। यह पंचम वेद संपूर्ण त्रैलोक्य के भावों का अनुकरण है- "त्रैलोकक्यस्यास्य सर्वस्य नाट्यं भावानुकीर्त्तनम्" (भरत के नाट्यशास्त्र का उद्धरण दशरथ ओझा की पुस्तक 'हिन्दी नाटक: उद्भव और विकास' राजपाल, द्वितीय संस्करण (1956) के पृ. 34 से ली गयी है।) इसमें कहा गया है कि " वेद में धर्मात्मा और ज्ञानियों की ही चर्चा नहीं, प्रत्युत इसमें कामियों के काम और अशिष्टों के सुधार की भी व्यवस्था होती है, दुर्विनीतों के निग्रह, क्लीबों की धृष्टता और शूरवीरों के उत्साह भी वर्णित होते हैं। इसी प्रकार मूर्खो की मूर्खता, विद्वानों की विद्वत्ता, धनियों के विलास, दुःखियों के धीरज, व्यवसायियों के धन प्राप्ति के उपाय, आर्तजनों के धैर्य आदि का विवेचन होता है। अर्थात् जब लोगों की क्रियाओं का अनुकरण अनेक भावों और अवस्थाओं से परिपूर्ण होकर किया जाये तो वह नाटक कहलाता है।" (वही, पृ.35)

"धर्मो धर्मप्रवृत्तानां कामः कामोपसेविनाम् ।
निग्रहो दुर्विनीतानां विनीतानां दमनक्रिया ।।
क्लीबानां धाष्टर्यजननमुत्साहः शूरमानिनाम् ।
अबुद्धानां बिबोधश्च वैदुष्यं विदुषामपि ।।
ईश्वराणां विलासश्च स्थैर्यं दुःखार्दितस्य च ।
अर्थोपजीविनामर्थो धृतिरुद्वेगचेतसाम् ।।
नानाभावोपसम्पन्नं नानावस्थान्तरात्मकम् ।
लोकवृत्तानुकरणं नाट्यमेतन्मया कृतम् ।।
उत्तमाधममध्यानां नराणां कर्मसंश्रयम् ।।"

– नाट्यशास्त्र, अध्याय-2, 109-113 (संदर्भ - 04)

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि इस पंचम वेद ने एक तरफ जीवन-जगत, धर्म, शास्त्र, अर्थ, काम, यश इत्यादि के विविध पक्षों के रहस्योद्‌घाटन के साथ-साथ नाटक के माध्यम से पहली बार एक ऐसे मंच का निर्माण किया गया जहाँ समाज के सभी वर्ग एक साथ बैठकर उत्सव देख सकें और मनोरंजन के साथ-साथ ज्ञान अर्जन भी कर सकें। इस संदर्भ में दशरथ ओझा ने लिखा है कि - "जन - नाटक का एक प्रकार से यह साहित्यिक रूप निर्धारित हुआ। दूसरी ओर यह भी कहा जा सकता है कि वैदिक यज्ञ का नाटक-रूपी नवीन संस्करण प्रादुर्भूत हुआ । आर्यों और अनार्यों का नाटक द्वारा इस प्रकार सम्मिलन हुआ और देश में सांस्कृतिक एकता की स्थापना हुई। अब हम विश्वास के साथ कह सकते हैं कि भारतवर्ष की विभिन्न जातियों में सांस्कृतिक एकता उत्पन्न कराने का श्रेय नाटक - शास्त्र के उस महान आचार्य को ही मिलना चाहिए, जिसको हम भरतमुनि के नाम से पुकारते हैं।" (वही, पृ. 38)

नाट्यसास्त्र की महानता के संदर्भ को उद्‌धृत करते हुए डॉ. सुरेन्द्रनाथ दीक्षित कहते हैं कि- "पंचम नाट्यवेद तो सार्ववर्णिक है और तीनों लोकों और भावानुकीर्तन रूप है। मनुष्य जीवन के मंगल के लिए नाट्य में न जाने कितने तत्त्वों का संकलन होता है। कहीं धर्म, कहीं विनोद, कहीं काम, कहीं हास्य, कहीं शम और कहीं वध का भी प्रदर्शन इसमें होता है। धार्मिकों के लिए धर्म, कामोपसेवियों के लिए श्रृंगार, दुर्विनीतों के लिए संयम, विनीतों के लिए दमन-क्रिया, शूरों और अभिमानियों के लिए उत्साह, दुःखपीड़ितों के लिए धैर्य, अर्थोपजीवियों के लिए अर्थ तथा उद्विग्न चित्त को धैर्य प्रदान करता है । नाना प्रकार के भावों और अवस्थाओं से परिपूर्ण लोकवृत्त का सजातीय अनुकरण रूप यह नाट्य होता है।" (सुरेन्द्रनाथ दीक्षित - 'भरत और भारतीय नाट्यकला', राजकमल, 1970, पृ. 65)

नाटक के माध्यम से न केवल जीवन के विविध पक्षों का उद्‌घाटन किया गया बल्कि भारतीय वर्ण-व्यवस्था के खिलाफ एक सकारात्मक कदम भी दृष्टिगोचर होने लगा था । मनोरंजन को आधार बनाकर सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक इत्यादि तमाम मुद्दों के लोकरंजक पहलुओं को नाटक के माध्यम से अभिव्यक्त किया जाने लगा ।

नाट्य-चिंतन के अन्तर्गत सर्वप्रथम हम नाटक के भेदों एवं प्रकारों की चर्चा करेंगे। नाटक दृश्य तथा श्रव्य दोनों ही है, यही इसकी लोकप्रियता एवं जन-जागरण का आधार है। संस्कृत में दो प्रकार की नाट्य-विधाएँ हैं - 1. रूपक, 2. उपरूपक । 'रूप' धातु में 'ण्वुल्', प्रत्यय लगने से 'रूपक' शब्द बनता है । ठीक इसी प्रकार नाटक 'नट' शब्द से निर्मित होता है । अभिनवगुप्त ने लिखा है - "नट

नताविति नमनं स्वभाव त्यागेन प्रहीभाव लक्षणम् ।" (अभिनव भारती, भाग-3, पृ. 80, डॉ. दीक्षित की पुस्तक 'भरत और भारतीय नाट्य कला' से उद्धृत, पृ. 124)

अर्थात् जिसमें पात्र अपना भाव त्याग कर परभाव (दूसरा) को ग्रहण करता है अथवा परभाव का रूप धारण करता है, वह नाट्य या रूपक कहलाता है। 'नाट्यशास्त्र' में भरत ने रूपक के दस भेद बताये हैं। धनंजय ने भी अपने ग्रंथ 'दशरूपकम्' में दस भेदों का उल्लेख किया है। 'अग्निपुराण', 'नाटकलक्षणरत्नकोष', 'भावप्रकाश', 'साहित्य दर्पण' में भी इन्हीं दस भेदों की चर्चा की गयी है। ये भेद हैं-नाटक, प्रकरण, व्यायोग, अंक, भाण, प्रहसन, डिम, समवकार, वीथी, ईहामृग । हेमचंद ने अपने 'काव्यानुशासन' में बारह भेदों का जिक्र किया है। भरत मुनि द्वारा उल्लिखित भेदों में दो और भेद नाटिका और सट्टक को मिलाकर कुल बारह भेदों का जिक्र है। किन्तु मुख्य रूप से भरत, धनंजय अथवा विश्वनाथ ने जो रूपक के दस भेद ही बताए हैं और आज भी वही मान्य है। हिन्दी में भी उसी को आधार बनाकर पठन-पाठन किया जाता है।

"नाटकमथ प्रकरणं भाणव्यायोगसमवकारडिमाः ।

इहामृगाङ्कवीथ्यः प्रहसनमिति रूपकाणि दश ।।"- साहित्य दर्पण 6/3

रूपक (नाटक) के दस भेद बताए गए हैं और वहाँ पर उन दस भेदों में नाटक भी एक भेद है। इस आलेख में रूपक के भेदों का संक्षित विवरण दिया जाएगा।

रूपक- "दशरूपककार ने रूपक को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि रूप का आरोप करने के कारण नाट्य को रूपक कहते हैं। (दशरूपक, पृ. 5) इसी बात को थोड़ा परिवर्तित करते हुए लिखा है कि 'दृश्यं तत्रामिनेयं तद्रूपारोपात्तु तु रूपकम्', 'साहित्य दर्पण', 3, 6। नाटक में अवस्थाओं की अनुकृति को महत्त्व दिया जाता है। किन्तु रूपक में अवस्थाओं की अनुकृति के साथ-साथ रूप का आरोप भी होता है। वास्तव में अभिनय-कला का पूर्ण और सफल रूप हमें रूपक में ही मिलता है। यदि नाट्य को रूप के आरोप से विशिष्ट न किया जाये तो पूर्ण साधारणीकरण नहीं हो सकेगा। क्योंकि साधारणीकरण के लिए केवल अवस्थानुकृति ही आवश्यक नहीं होती, रूपानुकृति भी अपेक्षित होती है। इस प्रकार स्पष्ट है कि नृत्त, नृत्य और नाट्य ये तीनों रूपक की प्रारंभिक भूमिकाएँ हैं। अभिनय-कला का पूर्ण और चरम रूप हमें रूपक में ही मिलता है।"

- डॉ. गोविन्द त्रिगुणायत, लेख - 'संस्कृत नाट्य-शास्त्र में रूपक का स्वरूप तथा भेद-प्रभेद', 'भारतीय नाट्य-साहित्य'- (सं.), डॉ. नगेन्द्र, एस. चांद एण्ड कम्पनी, नई दिल्ली, 1968, पृ. 24,)

नाटक- संसकृत के अनेक आचार्यों का यह मानना है कि नाटक की कथावस्तु इतिहास पर आधारित होनी चाहिये । वे मानते है कथा काल्पनिक हो सकती है लेकिन उस कल्पना का संबंध कहीं न कहीं इतिहास से होना चाहिए। यदि ऐसा नहीं है तो उसे नाटक नहीं कहा जा सकता। इसी प्रकार नायक के भी चार प्रकार बताये गए हैं। नाटक कम से कम 5 अंक का और अधिकतम 10 अंक का होना चाहिए ।

प्रकरण- नाट्यदर्पण के अनुसार- "प्रकर्षेण क्रियते कल्प्यते नेता फलं वस्तु वा व्यस्त - समस्ततयाऽत्रेति प्रकरणम्।" (नाट्यदर्पण, पृ. 103) अर्थात् जहाँ नेता, फल वा आख्यान वस्तु रूप या समस्त रूप से कल्पित होते हैं । उसे प्रकरण कहते हैं । धनंजय ने भी अपने 'दशरूपकम्' में कहा है कि प्रकरण की कथावस्तु कवि-कल्पित होनी चाहिये तथा उसका नायक मंत्री, ब्राह्मण, वैश्य, पुरोहित, सचिव, व्यापारी इत्यादि भी हो सकते हैं । धनंजय ने प्रकरण के तीन प्रकार बताये हैं-1. कुलजानिष्ठ, 2. गणिकानिष्ठ, 3. उभयानिष्ठ। (दशरूपक- 3/89, 82, पृ. 170)

अंक- आचार्य विश्वनाथ ने 'नाट्यदर्पण' में कहा है कि "उत्क्रमणोन्मुखा सृष्टिजीवितंयासां ता उत्सृष्टिकाः शोचन्त्यः स्त्रियस्ताभिरङ्कितत्वादुत्सृष्टिकाङ्कः ।" (पृ. 115)

जिनकी सृष्टि अर्थात् जीवन उत्क्रमणोन्मुख है, इस प्रकार की शोकग्रस्त स्त्रियों को 'उत्सृष्टिका' की संज्ञा दी गयी है, और ऐसी स्त्रियों की चर्चा करने वाला रूपकभेद 'उत्सृष्टिकाङ्क' कहलाता है। दशरूपक में धनंजय ने कहा है- 'उत्सृष्टिकाङ्के प्रख्यातं वृत्तं बुद्ध या प्रपंचयेत्।' अंक में कथावस्तु महत्वपूरण होता है, किन्तु कवि अपनी कल्पना से इसमें विस्तार या फेरबदल कर सकता है। इसका नायक दिव्य पुरुष नहीं होता है। नायक कोई भी साधारण व्यक्ति हो सकता है। यहां करुण रस की प्रधानता होती है। (दशरूपकम् 3/60, 69 (70, 71) पृ. 180)

व्यायोग

व्यायोग की कथावस्तु इतिहासप्रसिद्ध एवं नायक धीरोदात्त दिव्यपुरुष होता है। 'नाट्यशास्त्र' के अनुसार इसका नायक कोई दैवी पुरुष अथवा राजा ही हो सकता है। ('नाट्यशास्त्र')-18/135, 136, 137) पुरुष पात्रों की बहुलता होती है तथ स्त्री- पात्र नहीं होती है। हेमचंद ने अपने 'काव्यानुशासन' में लिखा है कि यदि स्त्री-पात्र की आवश्यकता प्रतीत हो, केवल एक-दो दासियाँ को प्रस्तुत किया जा सकता है। इसमें नायिका नहीं होती है। (हेमचंद 'काव्यानुशासन' - पृ. 323)

भाण- दशरूपकम् के अनुसार भाण उसे कहते हैं जहाँ कोई चतुर बुद्धिमान पंडित अपने या दूसरों द्वारा वर्णित धूर्त चरित्र का वर्णन करें। इसके अतिरिक्त समवकार, वीथी, प्रहसन, डिम, ईहामृग,उपरूपक आदि सभी रूपक के प्रकार हैं।

यहाँ इस वर्णन का मुख्य उद्देश्य यह है कि जब हिन्दी साहित्य के पुरोधा और नाटककार भारतेन्दु हरिशचन्द्र ने नाटक नाम से एक लंबा लेख लिखा तब उन्होंने इस बात का साफ-साफ उल्लेख किया कि इस निबंध को लिखने का विचार कैसे आया और इसे लिखने के लिए उन्होंने किन ग्रंथो का सहारा लिया। बेसक उसमें कुछ अंग्रेजी ग्रंथों के भी नाम हैं किन्तु मूल प्रेरणा अथवा स्रोत ग्रंथ वे आचार्य भरत के नाट्यशास्त्र से लेकर दशरूपकम् तक को ही मानते हैं। वहाँ से वे अभिनय की विशेषता, रंगमंच, रस आदि सभी का उल्लेख करते हैं। बल्कि भारतेन्दु ने कुछ नए रसों को भी जोड़ा है।

यह सत्य है कि आज नाटक में नए प्रयोग किए जा रहे हैं पर फिर भी नए नाटककारों ने भी नाट्यशास्त्र को विशेष स्थान दिया है। जैसे मोहन राकेश,धर्मवीर भारती, गिरीश कर्नाड। इससे निष्कर्ष यह निकलता है कि संसकृत की शास्त्रधर्मी तथा लोकधर्मी नाट्य परंपरा ने हिन्दी रंगमंच को पोषित और पल्लवित किया है।

***राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान**
जयपुर परिसर, (राज.)